

## प्रथम प्रश्नपत्र

# TOPIC-श्रीमद्भगवद्गीता

महाभारत युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वह श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है। यह महाभारत के भीष्मपर्व का अंग है। गीता में 18 अध्याय और 700 श्लोक हैं।<sup>[1]</sup> गीता की गणना प्रस्थानत्रयी में की जाती है, जिसमें उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र भी सम्मिलित हैं। अतएव भारतीय परम्परा के अनुसार गीता का स्थान वही है जो उपनिषद् और धर्मसूत्रों का है। उपनिषदों को गौ (गाय) और गीता को उसका दुग्ध कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उपनिषदों की जो अध्यात्म विद्या थी, उसको गीता सर्वांश में स्वीकार करती है। उपनिषदों की अनेक विद्याएँ गीता में हैं। जैसे, संसार के स्वरूप के संबंध में अश्वत्थ विद्या, अनादि अजन्मा ब्रह्म के विषय में अव्ययपुरुष विद्या, परा प्रकृति या जीव के विषय में अक्षरपुरुष विद्या और अपरा प्रकृति या भौतिक जगत के विषय में क्षरपुरुष विद्या। इस प्रकार वेदों के ब्रह्मवाद और उपनिषदों के अध्यात्म, इन दोनों की विशिष्ट सामग्री गीता में संनिविष्ट है। उसे ही पुष्पिका के शब्दों में ब्रह्मविद्या कहा गया है।<sup>[2]</sup>

महाभारत के युद्ध के समय जब अर्जुन युद्ध करने से मना करते हैं तब श्री कृष्ण उन्हें उपदेश देते हैं और कर्म व धर्म के सच्चे ज्ञान से अवगत कराते हैं। श्री कृष्ण के इन्हीं उपदेशों को श्रीमद्भगवद्गीता नामक ग्रंथ में संकलित किया गया है।

## गीता के १८ अध्याय

श्रीमद्भगवद्गीता के सभी १८ अध्यायों का संक्षिप्त परिचय क्रमशः निम्नप्रकार से हैं:-

- १. अर्जुन विषादयोग (सेना का सैन्य निरीक्षण)
- २. सांख्ययोग (गीता का सार)
- ३. कर्मयोग
- ४. ज्ञान कर्म संन्यासयोग (दिव्य ज्ञान)
- ५. कर्म संन्यासयोग (कर्म वैराग्य योग)
- ६. आत्मसंयमयोग (ध्यान योग)
- ७. ज्ञान विज्ञानयोग (भगवद्ज्ञान की प्राप्ति)
- ८. अक्षर ब्रह्मयोग (भगवान की प्राप्ति)
- ९. राजविद्या राजगुह्ययोग (परम गुप्त ज्ञान)
- १०. विभूतियोग (श्रीभगवान का ऐश्वर्य)
- ११. विश्वरूप दर्शनयोग (विराट रूप)

- १२. भक्तियोग
- १३. क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभागयोग (प्रकृति, पुरुष तथा चेतना)
- १४. गुणत्रय विभागयोग (प्रकृति के तीन गुण)
- १५. पुरुषोत्तमयोग
- १६. दैवासुर समद्विभागयोग (दैवी तथा आसुरी स्वभाव)
- १७. श्रद्धात्रय विभागयोग (श्रद्धा के विभाग)
- १८. मोक्ष संन्यासयोग (उपसंहार-संन्यास की सिद्धि)

## प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय का नाम अर्जुनविषादयोग है। वह गीता के उपदेश का विलक्षण रंगमंच प्रस्तुत करता है जिसमें श्रोता और वक्ता दोनों ही कुतूहल [शांति](#) के लिए नहीं वरन् [जीवन](#) की प्रगाढ़ समस्या के समाधान के लिये प्रवृत्त होते हैं। शौर्य और [धैर्य](#), साहस और बल इन चारों गुणों की प्रभूत मात्रा से [अर्जुन](#) का व्यक्तित्व बना था और इन चारों के ऊपर दो गुण और थे एक [क्षमा](#), दूसरी प्रज्ञा। बलप्रधान क्षात्रधर्म से प्राप्त होनेवाली स्थिति में पहुँचकर सहसा [अर्जुन](#) के चित्त पर एक दूसरे ही प्रकार के मनोभाव का आक्रमण हुआ, कार्पण्य का। एक विचित्र प्रकार की करुणा उसके मन में भर गई और उसका [क्षात्र स्वभाव](#) लुप्त हो गया। जिस [कर्तव्य](#) के लिए वह कटिबद्ध हुआ था उससे वह विमुख हो गया। ऊपर से देखने पर तो इस स्थिति के पक्ष में उसके तर्क धर्मयुक्त जान पड़ते हैं, किंतु उसने स्वयं ही उसे कार्पण्य दोष कहा है और यही माना है कि [मन](#) की इस कायरता के कारण उसका जन्मसिद्ध स्वभाव उपहत या नष्ट हो गया था। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि युद्ध करे अथवा वैराग्य ले ले। क्या करें, क्या न करें, कुछ समझ में नहीं आता था। इस मनोभाव की चरम स्थिति में पहुँचकर उसने धनुषबाण एक ओर डाल दिया।

[कृष्ण](#) ने [अर्जुन](#) की वह स्थिति देखकर जान लिया कि अर्जुन का [शरीर](#) ठीक है किंतु युद्ध आरंभ होने से पहले ही उस अद्भुत [क्षत्रिय](#) का मनोबल टूट चुका है। बिना [मन](#) के यह शरीर खड़ा नहीं रह सकता। अतएव कृष्ण के सामने एक गुरु [कर्तव्य](#) आ गया। अतः तर्क से, बुद्धि से, [ज्ञान](#) से, कर्म की चर्चा से, [विश्व](#) के स्वभाव से, उसमें [जीवन](#) की स्थिति से, दोनों के नियामक अव्यय पुरुष के परिचय से और उस सर्वोपरि परम सत्तावान [ब्रह्म](#) के साक्षात् [दर्शन](#) से [अर्जुन](#) के [मन](#) का उद्धार करना, यही उनका लक्ष्य हुआ। इसी तत्वचर्चा का विषय गीता है। पहले अध्याय में सामान्य रीति से भूमिका रूप में अर्जुन ने भगवान से अपनी स्थिति कह दी।

- प्रथम अध्याय में दोनों सेनाओं का वर्णन किया जाता है।
- शंख बजाने के पश्चात् [अर्जुन](#) सेना को देखने के लिए रथ को सेनाओं के मध्य ले जाने के लिए [कृष्ण](#) से कहते हैं।
- तब मोहयुक्त हो [अर्जुन](#) कायरता तथा शोक युक्त वचन कहता है।

# द्वितीय अध्याय

दूसरे अध्याय का नाम [सांख्ययोग](#) है। इसमें जीवन की दो प्राचीन संमानित [परंपराओं](#) का तर्कों द्वारा वर्णन आया है। अर्जुन को उस कृपण स्थिति में रोते देखकर कृष्ण ने उनका [ध्यान](#) दिलाया है कि इस प्रकार का क्लैव्य और हृदय की क्षुद्र दुर्बलता अर्जुन जैसे वीर के लिए उचित नहीं।

कृष्ण ने अर्जुन की अब तक दी हुई सब युक्तियों को प्रज्ञावाद का झूठा रूप कहा। उनकी युक्ति यह है कि प्रज्ञादर्शन काल, कर्म और स्वभाव से होनेवाले संसार की सब घटनाओं और स्थितियों को अनिवार्य रूप से स्वीकार करता है। जीना और मरना, जन्म लेना और बढ़ना, विषयों का आना और जाना। सुख और दुख का अनुभव, ये तो संसार में होते ही हैं, इसी को प्राचीन आचार्य पर्यायवाद का नाम भी देते थे। काल की चक्रगति इन सब स्थितियों को लाती है और ले जाती है। जीवन के इस स्वभाव को जान लेने पर फिर शोक नहीं होता। यही भगवान का व्यंग्य है कि प्रज्ञा के दृष्टिकोण को मानते हुए भी अर्जुन इस प्रकार के मोह में क्यों पड़ गया है।

ऊपर के दृष्टिकोण का एक आवश्यक अंग जीवन की नित्यता और शरीर की अनित्यता था। नित्य जीव के लिए शोक करना उतना ही व्यर्थ है जितना अनित्य शरीर को बचाने की चिंता। ये दोनों अपरिहार्य हैं। जन्म और मृत्यु बारी बारी से होते ही हैं, ऐसा समझकर शोक करना उचित नहीं है।

फिर एक दूसरा दृष्टिकोण स्वधर्म का है। जन्म से ही प्रकृति ने सबके लिए एक धर्म नियत कर दिया है। उसमें जीवन का मार्ग, इच्छाओं की परिधि, कर्म की शक्ति सभी कुछ आ जाता है। इससे निकल कर नहीं भागा जा सकता। कोई भागे भी तो प्रकृति उसे फिर खींच लाती है।

इस प्रकार काल का परिवर्तन या परिमाण, जीव की नित्यता और अपना स्वधर्म या स्वभाव जिन युक्तियों से भगवान् ने अर्जुन को समझाया है उसे उन्होंने सांख्य की बुद्धि कहा है। इससे आगे अर्जुन के प्रश्न न करने पर भी उन्होंने योगमार्ग की बुद्धि का भी वर्णन किया। यह बुद्धि [कर्म](#) या प्रवृत्ति मार्ग के आग्रह की बुद्धि है इसमें कर्म करते हुए कर्म के फल की [आसक्ति](#) से अपने को बचाना आवश्यक है। कर्मयोगी के लिए सबसे बड़ा डर यही है कि वह फल की इच्छा के दल दल में फँस जाता है; उससे उसे बचना चाहिए।

अर्जुन को संदेह हुआ कि क्या इस प्रकार की बुद्धि प्राप्त करना संभव है। व्यक्ति कर्म करे और फल न चाहे तो उसकी क्या स्थिति होगी, यह एक व्यावहारिक शंका थी। उसने पूछा कि इस प्रकार का दृढ़ प्रज्ञावाला व्यक्ति जीवन का व्यवहार कैसे करता है? आना, जाना, खाना, पीना, कर्म करना, उनमें लिप्त होकर भी निर्लेप कैसे रहा जा सकता है? कृष्ण ने कितने ही प्रकार के बाह्य इंद्रियों की अपेक्षा मन के संयम की व्याख्या की है। [काम](#), [क्रोध](#), [भय](#), [राग](#), द्वेष के द्वारा मन का सौम्यभाव बिगड़ जाता है और इंद्रियाँ वश में नहीं रहतीं। इंद्रियजय ही सबसे बड़ी आत्मजय है। बाहर से कोई विषयों को छोड़ भी दे तो भी भीतर का मन नहीं मानता। विषयों का स्वाद जब मन से जाता है, तभी मन

प्रफुल्लित, शांत और सुखी होता है। समुद्र में नदियाँ आकर मिलती हैं पर वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। ऐसे ही संसार में रहते हुए, उसके व्यवहारों को स्वीकारते हुए, अनेक कामनाओं का प्रवेश मन में होता रहता है। किंतु उनसे जिसका मन अपनी मर्यादा नहीं खोता उसे ही शांति मिलती है। इसे प्राचीन अध्यात्म परिभाषा में गीता में ब्राह्मीस्थिति कहा है।

- अर्जुन की कायरता के विषय में अर्जुन कृष्ण संवाद
- सांख्य योग
- कर्मयोग
- स्थिर बुद्धि व्यक्ति के गुण